THE TIMES OF INDIA

Date:22-04-23

Quantum Jump

GoI does well to fund R&D in computing's next revolution

TOI Editorials

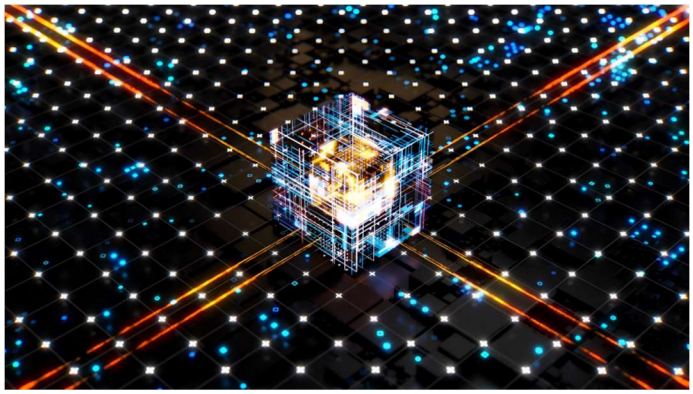

GoI's seed fund of Rs 6,000cr ($730m) for the National Quantum Mission (NQM) for 2023-24 through 2030-31 is a fillip to R&D in quantum tech, whose applications are in multiple stages of experimentation and prototypes globally. It is a quirk of quantum computing that for India to prioritise $730 million for the mission is an expensive call, yet for the field of study, a modest fund. In the "elite club" of six with public-funded quantum initiatives, China has allocated $15. 3 billion (2021-2025), EU $7. 2 billion and the US $1. 2 billion. China also has the largest share of patents in quantum tech.

It is a measure of the mind-bending nature of quantum that the ground-breaking research of 1970s and 1980s into the phenomenon of entanglement, the heart of quantum science, was recognised with a Physics Nobel only in 2022. The Laureates had shown that entangled particles (physically apart yet linked) can ferry information over massive distances. This has far-reaching implications for quantum communications tech (QCT), of key strategic significance to India and one of the four verticals for the mission's R&D. QCT allows a country to secure its critical infrastructure with quantum cryptographyto make it "unhackable". Conventional data networks are putty in the face of quantum computing if the latter is applied to organise a cyberattack.

Challenges to build quantum infra are formidable. The first step is for public-funded research institutes to collaborate with startups and firms to develop the initial intermediate-sized supercomputers. At present, India only has a basic quantum computer Qsim that allows researchers to simulate quantum computation. Hardware aside, talent gap is a bottleneck. In 2021, for 290 quantum tech masters' grads globally, there were 851 jobs. Barely 16% of the world's universities offer degrees in the field. This is the ecosystem India is entering. Yet GoI's commitment to fundamental science and endeavour is a great beginning. NQM could not have come a day sooner. QED.

THE HINDU

Date:22-04-23

Terror on the road

India needs to rethink its Kashmir strategy and attitude to Pakistan

Editorial

In another spectre of violence in Jammu and Kashmir (J&K), five soldiers were killed and another critically injured in a terror attack on April 20 in the Rajouri-Poonch Sector, close to the Line of Control (LoC) in the Jammu division. Preliminary reports have suggested that terrorists — their numbers and affiliations are not known immediately — attacked, in inclement weather, an Army vehicle that was on a counter-insurgency patrol between Bhimber Gali-Poonch in the Rajouri sector. The attack also comes at a time when J&K is working diligently to host a G-20 Tourism Working Group meeting, in May. Separately, Pakistan's Foreign Minister Bilawal Bhutto Zardari is likely to attend a Shanghai Cooperation Organisation (SCO) meeting in Goa next month, which has kindled the possibility of fresh India-Pakistan engagement. The attack raises the question about the management of patrols in sensitive locations in the region which has seen a spike in militant violence in the recent past, including a terror attack on a village on January 1 this year that left seven civilians dead. The fact that the Army vehicle was on an unaccompanied drive and remained unattended immediately after the attack is a matter of serious concern.

The images of the Army vehicle on fire and charred bodies have reignited memories of and visuals from the Pulwama attack in 2019. On February 14 that year, a convoy of buses with Central Reserve Police Force jawans was on the Jammu-Srinagar national highway way in Pulwama's Lethpora area when a suicide bomber in an explosive-laden car managed to breach security. Forty personnel lost their lives in the terror attack that shocked the political class, the military establishment and the country. With Indian intelligence agencies pointing to the role of the Jaish-e-Muhammad (JeM), India sent its fighter jets across the Line of Control to strike JeM training camps in Balakot, Pakistan, inflicting casualties and damaging the terror infrastructure there. India's strident response to cross-border terror was noticed internationally, and became a topic of campaign during the Lok Sabha election soon after. However, terror emanating from Pakistan has failed to ebb, which is evident from the rising violence in J&K over the past three years, especially after the government decided to end the region's semi-autonomous status on August 5, 2019. Claims on the subject made recently by the then J&K Governor Satya Pal Malik, in interviews, have brought to the fore fresh questions about the intent behind the political class while approaching the issue of terrorism in the country. Perhaps it is time India reviewed its strategy in Kashmir, including the current freeze on talks with Pakistan.

दैनिक भास्कर

Date:22-04-23

नए दौर में दरकती विवाह संस्था के खतरे क्या हैं

संपादकीय

महानगरों में लिव-इन रिलेशनशिप की खबरें इन दिनों आम होती जा रही है। पर कई बार इनके बीच कटुता इतनी बढ़ जाती है कि 'लिव-इन रिलेशन' उतनी ही सहजता से ब्रेक-अप में बदल जाता है। इसके साथ ही सदियों से स्थापित मजबूत भारतीय विवाह संस्था तेजी से दरक रही है। दरअसल पश्चिमी सभ्यता अंगीकार करते हुए हम यह नहीं जानते कि वहां राज्य की दृष्टि में व्यक्ति सर्वोच्च है। अगर कोई भूखा है तो उसे पुलिस वाला न केवल सरकारी प्रबंध से भोजन कराएगा बल्कि उसके लिए आजीविका का साधन भी राज्य उपलब्ध कराएगा। बाद भी एक ऐसा उपभोक्ता समाज चाहता है जो आत्मनिर्भर है। अमेरिकी कंज्यूमर प्रोडक्ट कंपनियां 'सेल्फ लव' (यानी अपने से प्यार करो) के नए नारे से युवाओं को लुभा रही है। ऐसा मुक्कं केवल अपनी खूबसूरती, अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं की पूर्ति को ही जीवन का अंतिम सत्य समझता है। एक सर्वे के अनुसार अमेरिका में 80 प्रतिशत युवा इस नई 'सेल्फ लव' की जीवन शैली के कारण आज अकेलेपन का शिकार है। लेकिन बाजारवाद इसे प्रमोट कर रहा है, क्योंकि समूह में लोग कम खर्च करते हैं अकेले ज्यादा यानी बाजार तय करेगा हम पत्नी को कितने दिन और कितना प्यार करें!

Date:22-04-23

तेजी से बढ़ती गिग इकोनॉमी से निर्मित हुए हैं नए अवसर

पंकज बंसल, (डिजिटल रिक्रूटमेंट प्लेटफॉर्म)

गिग इकोनॉमी के उदय से नौकरियों की तलाश करने वालों को अपनी रुचि और कौशल के अनुरूप काम करने के बेहतर अवसर मिले हैं। साथ ही इससे उन्हें वह फ्लेग्जिबिलिटी भी मिलती है, जिसकी उन्हें जरूरत थी। हाल के सालों में गिग इकोनॉमी तेजी से बढ़ी है। इससे उन लोगों के लिए नए अवसर निर्मित हुए हैं, जो परम्परागत रोजगार के बजाय फ्रीलांस या शॉर्ट-टर्म कॉन्ट्रैक्ट्स में रुचि रखते हैं। डिकोडिंग जॉब्स 2023 रिपोर्ट के मुताबिक अनुमान लगाया गया है कि भारत में गिग-वर्कफोर्स 2025 तक बढ़कर 110 लाख लोगों की हो जाएगी। नीति आयोग की 2022 रिपोर्ट का भी पूर्वानुमान है कि 2030 तक गिग इकोनॉमी बढ़कर 2.35 करोड़ कामगारों की हो सकती है। जहां गिग-वर्क लोगों को अपनी शर्तों पर काम करने और काम के घंटे चुनने की आजादी देता है, वहीं इसमें कुछ चुनौतियां भी हैं। इस परिदृश्य को समझते हैं।

क्यों बढ़ रही है गिग इकोनॉमी

आज के डायनैमिक मार्केट में व्याप्त अस्थिरता का सामना करने के लिए गिग-वर्क एक आकर्षक समाधान बनकर सामने आए हैं। अनेक बिजनेस अपने भविष्य की सम्भावनाओं के प्रति अनिश्चित हैं और फुलटाइम कर्मचारियों को नौकरी पर रखने से संकोच कर रहे हैं। ऐसे में गिग-वर्क एक लचीला और किफायती विकल्प मुहैया कराता है। अतीत के ट्रेंड्स बताते हैं कि गिग शैली सफल रही है। मिसाल के तौर पर, उबर जैसे राइड-शेयरिंग प्लेटफॉर्म्स ने ट्रांसपोर्टेशन उद्योग में क्रांति ला दी है। वहीं अपवर्क और फाइवेर्र जैसी फ्रीलांस वेबसाइटों ने वैश्विक बाजार को अपनी सेवाएं मुहैया कराना सरल बना दिया है। इनकी सफलता से हेल्थकेयर और मार्केटिंग में भी गिग-वर्क बढ़ा है। यह संस्थाओं के लिए एक महत्वपूर्ण प्रतिभा-प्रबंधन रणनीति साबित हुआ है। कम्पनियां किसी विशेष टास्क या प्रोजेक्ट के लिए तुरंत ही किसी फ्रीलांसर या स्वतंत्र कॉन्ट्रैक्टर की मदद ले लेती हैं, जिससे उनकी पहुंच विभिन्न प्रकार की स्किल्स, विशेषज्ञता और प्रतिभाओं तक हो जाती है।

चुनौतियां और अवसर

गिग-वर्करों को अकसर भुगतान में देरी या अनियमितता की स्थिति का सामना करना पड़ता है, क्योंकि उनके काम की प्रकृति रेगुलर नहीं होती। उन्हें किसी पूर्णकालिक कर्मचारी जितने लाभ और सुरक्षा नहीं मिल पातीं। वे हेल्थकेयर, रिटायरमेंट प्लान, पेड लीव आदि का लाभ नहीं ले पाते। मौजूदा परिदृश्य में गिग-वर्करों के सामने नौकरियों के सीमित अवसरों की भी चुनौती है। इसके बावजूद उनका भविष्य उजला है। संस्थाएं गिग-वर्क के लिए तैयारियां कर रही हैं और उसके लिए ग्राउंडवर्क कर रही हैं। वे ऐसी टेक्नोलॉजी और प्रक्रियाओं में निवेश कर रही हैं, जिनकी मदद से वे गिग-वर्करों को सुगमता से अपने से जोड़ सकें। 2024 की तीसरी तिमाही तक गिग-कार्यों का पैमाना बढ़ जाएगा। एवाइन जैसे गिग प्लेटफॉर्म देशभर के वर्करों को ढेरों अवसर मुहैया कराते हैं। 15 लाख गिग पार्टनरों और 11 करोड़ पूर्ण किए जा चुके प्रोजेक्ट्स के साथ एवाइन गिग-वर्क के लिए एक भरोसेमंद मंच बन चुका है। अब गिग-इकोनॉमी ब्लू-कॉलर जॉब्स के दायरे से बाहर निकलकर व्हाइट-कॉलर जॉब्स के क्षेत्र में प्रवेश कर रही है, क्योंकि विशेषकर टेक सेक्टर में हाई-स्किल्ड गिग-वर्करों की मांग में 240 फीसदी का इजाफा हुआ है।

आगे की राह

गिग-वर्क की टॉप कैटेगरी ऑडिटिंग, इनविजिलेशन, डाटा ऑपरेशंस बनी हुई हैं। छोटे शहरों और कस्बों में भी गिग-वर्क पार्टिसिपेशन में बढ़ोतरी हुई है। इतना ही नहीं, महिलाएं भी गिग-वर्क के लिए आगे आ रही हैं और उनके गिग-वर्क रजिस्ट्रेशनों में 187 फीसदी का इजाफा हुआ है। देश में गिग-वर्क के भविष्य को सुरक्षित करने के लिए सरकार ने सोशल सिक्योरिटी कोड 2020 के जरिए कदम उठाए हैं, जिसमें गिग-वर्करों के लिए सामाजिक सुरक्षा के उपायों सहित ग्रैच्युटी भी शामिल है। महात्मा गांधी ने कहा था कि भविष्य इस पर निर्भर करता है कि आप आज क्या करते हैं। गिग-वर्क के संदर्भ में यह बात अपनी स्किल्स को बढ़ाने और पर्सनल ब्रांड को स्थापित करने के परिप्रेक्ष्य में समझी जा सकती है। इसमें अपनी अपस्किलिंग करने व विशेषज्ञता बढ़ाने के लिए प्रशिक्षण लेना शामिल है, साथ ही अपने काम को शोकेस करते हुए क्लाइंट्स को आकृष्ट करने के लिए अपनी ऑनलाइन मौजूदगी दर्ज कराना भी जरूरी है। गिग इकोनॉमी से उनके लिए अवसर निर्मित हुए हैं, जो परम्परागत रोजगार के बजाय फ्रीलांस या शॉर्ट-टर्म कॉन्ट्रैक्ट्स में रुचि रखते हैं। भारत में गिग-वर्कफोर्स 2025 तक बढ़कर 110 लाख लोगों की हो जाएगी।

दैनिक जागरण

Date:22-04-23

लोक सेवकों की जिम्मेदारी,

संपादकीय

लोक सेवा दिवस पर लोक सेवकों को संबोधित करते हुए प्रधानमंत्री ने यह जो कहा कि यदि उन्होंने अपने दायित्वों का निर्वहन सही तरह नहीं किया तो न केवल देश का धन लुट जाएगा, बल्कि करदाताओं के पैसे भी बर्बाद हो जाएंगे, वह एक यथार्थ है। समस्याओं के समाधान और विकास योजनाओं को गति देने में जितनी महती भूमिका लोक सेवकों की है, उतनी अन्य किसी की नहीं। सरकारें कितनी भी अच्छी योजनाएं बना लें, उनका सही तरह क्रियान्वयन तब तक संभव नहीं, जब तक लोक सेवक उन्हें जमीन पर उतारने के लिए तत्पर नहीं होते। लोक सेवकों से केवल यही अपेक्षित नहीं होता कि वे सरकारी योजनाओं पर सही तरह अमल करें। उनसे यह भी अपेक्षित होता है कि वे जनता की समस्याओं के समाधान को लेकर सचेत रहें। उनका एक अन्य दायित्व यह भी होता है कि वे सरकारी तंत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार पर लगाम लगाएं। भ्रष्टाचार को तभी बल मिलता है, जब लोक सेवक या तो उसकी अनदेखी करते हैं या फिर अपने अधिकारों का मनमाना इस्तेमाल करते हुए उसमें शामिल हो जाते हैं। यह किसी से छिपा नहीं कि भ्रष्टाचार के अनेक मामलों में नेताओं और नौकरशाहों की मिलीभगत होती है। यदि नौकरशाह चाह लें तो वे न केवल हर तरह के भ्रष्टाचार पर लगाम लगा सकते हैं, बल्कि उन भ्रष्ट नेताओं के इरादों पर पानी भी फेर सकते हैं, जो अपनी जेबें भरने की कोशिश में रहते हैं।

यह अच्छी बात है कि प्रधानमंत्री ने लोक सेवकों को उनके दायित्वों की याद दिलाते हुए यह रेखांकित किया कि उनकी सक्रिय भागीदारी के बिना देश का तेज गति से विकास संभव नहीं, लेकिन उन्हें यह भी देखना होगा कि उन लोक सेवकों को सही राह पर कैसे लाया जाए, जो अपना काम ढंग से नहीं करते अथवा जो भ्रष्ट नेताओं से हाथ मिला लेते हैं। इसके लिए प्रशासनिक सुधारों की दिशा में आगे बढ़ना होगा। एक ओर जहां ऐसा वातावरण बनाने की आवश्यकता है कि लोक सेवक बिना किसी भय-संकोच अपना काम कर सकें, वहीं दूसरी ओर उनके कार्यों की सतत निगरानी भी सुनिश्चित करनी होगी। निःसंदेह सरकारें सब कुछ नहीं कर सकती, लेकिन ऐसा माहौल तो बना ही सकती हैं कि जो भी कार्य होने हैं, वे सरलता से हों। इस लक्ष्य की प्राप्ति लोक सेवकों की सजगता से ही संभव है। सरकारी तंत्र के कामकाज के तौर-तरीके बदलने के कैसे सकारात्मक प्रभाव होते हैं, इसे इससे समझा जा सकता है कि करीब तीन लाख करोड़ रुपये गलत हाथों में जाने से बचे हैं। यह एक बड़ी उपलब्धि है, लेकिन सरकारी योजनाओं को अभी और प्रभावी तरीके से जमीन पर उतारने की चुनौती है। सौभाग्य से अब वह स्थिति नहीं, जिसमें सरकारी कोष के एक रुपये में से 90 पैसे बिचौलियों की भेंट चढ़ जाते थे, लेकिन सरकारी तंत्र में भ्रष्टाचार तो अभी भी है।

Date:22-04-23

गंभीर हो रहा पृथ्वी पर मंडराता खतरा

गिरीश्वर मिश्र,(लेखक पूर्व कुलपति हैं)

व्यस्त दैनिक जीवन में हम सब कुछ अपने को ही ध्यान में रखकर सोचते-विचारते हैं और करते हैं। उस पृथ्वी को भूल जाते हैं, जिस पर हमारा यह जीवनयापन हो रहा है और हमारी बदलती जीवनशैली के कारण इसके अस्तित्व पर ही संकट के बादल मंडरा रहे हैं। जबकि भारतीय चिंतन परंपरा में प्रकृति के सभी तत्वों को प्राथमिकता मिलती आई है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश जैसे पंच महाभूत जीवन से घनिष्ठ रूप से संबंधित हैं। वनस्पति, जल, अंतरिक्ष और पृथ्वी को लेकर वैदिक चिंतन में प्रकृति की महिमा का बड़ा बखान किया गया है। वर्ष चक्र की एक यज्ञ के रूप में कल्पना करते हुए ऋग्वेद में वसंत ऋतु को 'घी', ग्रीष्म को 'समिधा' शरद को 'हवि' कहा गया है। पृथ्वी पर वनस्पति, पशु-पक्षी और मनुष्य साथ-साथ रहते आए हैं। वे सहजीवी रहे हैं। सहजीवन में आदान-प्रदान होता है और परस्पर निर्भरता को पहचानते हुए प्रकृति की रक्षा भी की जाती है। प्रकृति 'माता' की भांति पूज्य है। वेद में भूमि को मां और स्वयं को पृथ्वी की संतति कहा गया है: माता भूमि: पुत्रोहम् पृथिव्या:। पृथ्वी के प्रति आभार का सहज भाव भारतीय समाज में रहा है। प्रकृति के विभिन्न पक्ष ईश्वर के प्रत्यक्ष शरीर कहे गए हैं। पीपल, नीम और वट के वृक्षों की पूजा की प्राचीन परंपरा रही है। प्राणवायु देने वाले वृक्षों के बिना जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती। विभिन्न वनस्पतियों के औषधीय गुणों को आयुर्वेद में महत्वपूर्ण स्थान मिला है और 'वृक्षायुर्वेद' एक शास्त्र के रूप में विकसित हुआ।

नदी, वृक्ष और पशु-पक्षी मिलकर पारिस्थितिकी का निर्माण करते हैं। पारिस्थितिकी के संतुलन में इनका समान महत्व है। लोक मानस में अभी भी गीतों, कथाओं, जीवन-संस्कारों, लोकाचारों, रीति-रिवाजों तथा उपासना के यज्ञादिक कृत्यों में विभिन्न पौधों और वृक्षों की जीवंत उपस्थिति बनी हुई है। आम्र-पल्लव, दूर्वा और तुलसी-दल के बिना पूजा विधि पूरी नहीं होती। गंगा जैसी नदियों को भी शादी-विवाह जैसे अवसरों पर न्योता देने की प्रथा है। इनमें स्नान कर पुण्य-लाभ कमाने का आकर्षण अभी भी बना हुआ है। कुंभ की परंपरा इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। प्रकृति के प्रति आकर्षण का एक आधार यह भी है कि नैसर्गिक परिवेश का सौंदर्य आत्मिक तृप्ति देने वाला होता है। सागर, वन, झील, पर्वत, वृक्ष और नदी की संगत हमारे आध्यात्मिक जीवन, सृजन और सामुदायिक जीवन को समृद्ध बनाती है। उसका स्वाद लेने के लिए लोग दुर्गम स्थानों की यात्रा करते नहीं थकते। इतिहास से पुष्टि होती है कि नदियां पूरे विश्व में मानव सभ्यता की जननी रही हैं। उन्हीं के निकट संस्कृतियों के विकास की गाथाएं लिखी जाती रही हैं।

भारत में प्राकृतिक संसाधनों को संग्रह कर उपभोग किया जाता रहा, परंतु बाजार केंद्रित अर्थव्यवस्था के साथ संसाधनों के असीमित उपयोग की लालसा बढ़ी। अंग्रेजी उपनिवेश के दौरान उनके अपने हितों के लिए जंगलों की कटाई और खनन का दौर शुरू हुआ और प्राकृतिक संपदा का घोर शोषण आरंभ हुआ। निर्वनीकरण और बांधों का निर्माण आज भी जारी है। यह दुखद है कि पर्यावरण जैसे गंभीर प्रश्न के साथ भी प्रतीकात्मक ढंग से व्यवहार किया जाता है। पर्यावरण की शुद्धता और स्वच्छता का सवाल जीवन से जुड़ा है, परंतु सत्ता और कारपोरेट दुनिया की मिलीभगत के बीच जल, जीवन और जंगल पर बड़ा खतरा मंडरा रहा है। प्रकृतिभक्षी दृष्टि के चलते पारिस्थितिक असंतुलन के फलस्वरूप अब आए दिन अतिवृष्टि, अनावृष्टि, बाढ़, अकाल और तूफान जैसी प्राकृतिक आपदाओं के संकट छाए रहते हैं। प्रजातियां लुप्त हो रही हैं। जैव विविधता घट रही है। आधी सदी से कम समय में पक्षियों, स्तनधारियों, मछलियों, उभयचरों और सरीसृपों में

औसतन 68 प्रतिशत कमी आई है। जैव विविधता और पारिस्थितिकी तंत्र की रक्षा और पुनर्स्थापना आवश्यक है। इस दृष्टि से संयुक्त राष्ट्र द्वारा जीडीपी में प्रकृति के सच्चे मूल्य को भी शामिल करने की बात कही जा रही है।

कृषि योग्य भूमि बनाने के उपक्रम में 50 प्रतिशत वृक्ष खत्म हुए हैं। समुद्र के उपयोग में भारी बदलाव से सामुद्रिक पारिस्थितिकी भी बदली है। उर्वरकों और कीटनाशकों के प्रयोग की वजह से रसायन भारी मात्रा में पर्यावरण को प्रदूषित कर रहे हैं। भूमि का क्षरण हो रहा है। वन आवरण घटने पर है। नदियों के जल स्तर में गिरावट आ रही है। भूजल स्तर घट रहा है। ग्लेशियर खिसक रहे हैं। जीवन शैली में आए बदलाव से तरह-तरह की गैसों का उत्सर्जन हो रहा है। प्रकृति और मनुष्य के बीच संघर्ष का परिणाम पर्यावरण संकट के रूप में आ रहा है। हवा, पानी और भोजन जैसे जीवन के लिए अनिवार्य तत्व घोर प्रदूषण की गिरफ्त में आ रहे हैं। मौसम में बदलाव को लेकर पृथ्वी पर आपातकाल लगाने जैसी स्थिति उभर रही है। पृथ्वी पर हावी हो रहे मनुष्य ने प्राकृतिक संसाधनों की पूरी शृंखला को तनावग्रस्त बना दिया है।

संपूर्ण जैविक विश्व एक इकाई है और मनुष्य को इससे अलग नहीं रखा जा सकता। अन्य तत्वों की तरह वह भी पर्यावरण की व्यवस्था का ही एक हिस्सा है। इसलिए समग्र प्रकृति के साथ जुड़कर और तालमेल के साथ ही आगे बढ़ा जा सकता है। इस दिशा में धरती की सीमा में ही उपभोग और उत्पादन एकमात्र विकल्प है। इसके लिए आमजन के मन में प्रकृति प्रेम का भाव पैदा करना होगा। जल संरक्षण, वृक्षारोपण और जैविक खेती की ओर ध्यान देना होगा। जीव जगत की पारस्परिकता को स्वीकार करते हुए दायित्व बोध जगाना होगा और आत्मीय रिश्ता बनाना होगा। प्रकृति को देखने और उसे महत्व देने के नजरिये को बदलना होगा। इस पृथ्वी दिवस पर हमारा यही संकल्प होना चाहिए।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:22-04-23

शहरी समस्याओं के बीच लचीलेपन पर एक नज़र

अमित कपूर और विवेक देवरॉय, (कपूर इंस्टीट्यूट फॉर कंपीटिटिवनेस, इंडिया में चेयर और स्टैनफर्ड यूनिवर्सिटी में लेक्चरर हैं। देवरॉय प्रधानमंत्री की आर्थिक सलाहकार परिषद के चेयरमैन हैं)

दुनिया भर के शहर पहले की तुलना में आपस में बहुत अधिक जुड़े हुए हैं और उनकी आबादी का घनत्व भी काफी अधिक बढ़ गया है। इसके सामाजिक और आर्थिक लाभ बहुत अधिक हैं लेकिन इसके साथ ही दिक्कतें भी बढ़ रही हैं। किसी भी शहर के सामने कई तरह की दिक्कतें आती हैं। इनमें प्राकृतिक आपदाओं से लेकर अचानक घटित होने वाली घटनाएं भी शामिल हैं जो आबादी के लिए खतरा उत्पन्न करती हैं।

इसके अलावा अत्यधिक बेरोजगारी, सामाजिक सुरक्षा ढांचे की कमी तथा असमान सार्वजनिक परिवहन व्यवस्था, गरीबी का प्रभाव आदि समय के साथ किसी समुदाय के सामाजिक ढांचे को क्षति पहुंचाते हैं और तब लगने वाले झटके और अधिक नुकसानदेह हो जाते हैं। आज मांग ऐसे शासन ढांचे की है जो जोखिम को कम करें और बदलते हुए हालात से निपटें। इस संदर्भ में जरूरत इस बात की है कि हम अधिक समायोजन वाला माहौल तैयार करें ताकि जीवन की सुगमता और कारोबार करने की सहजता में सुधार लाया जा सके और शहरी व्यवस्था के लचीलेपन में और अधिक इजाफा किया जा सके।

संयुक्त राष्ट्र का इंसानी बसावट कार्यक्रम यानी यूएन हैबिटेट शहरी लचीलेपन को जिस प्रकार परिभाषित करता है उसका दूसरे शब्दों में यही अर्थ निकलता है कि शहरी लचीलापन दरअसल किसी शहर की व्यवस्था, उसके कारोबारों, समुदायों तथा लोगों की वह क्षमता है जिसके माध्यम से वे तमाम मुश्किलों और तनावों का सामना करते हुए भी हालात से निपटते हैं और समृद्ध होते हैं।

एक शहर अपने बुनियादी ढांचे को मजबूत करके तथा उसकी स्थिरता को चुनौती देने वाले मसलों की बेहतर पहचान करके अपना दायरा तथा अपने रहवासियों की बेहतरी सुनिश्चित कर सकता है। ऐसा करके ही वह यह सुनिश्चित कर सकता है कि तमाम कठिनाइयों के बावजूद शहर का विकास होता रहे। यह शहरीकरण, जलवायु परिवर्तन और वैश्वीकरण जैसे वैश्विक रुझानों को हल करने का मानक भी बनता है।

शहरी लचीलेपन की एक आवश्यकता यह भी है कि शहर अपनी क्षमताओं और अपने समक्ष मौजूद खतरों को व्यापक रूप से परखते रहें। खासतौर पर अपने सर्वाधिक संकटग्रस्त नागरिकों को ध्यान में रखते हुए। शहरी शासन अक्सर खंडित संरचना वाला होता है जहां विभिन्न टीमें संकट से निजात पाने की योजनाएं बनाती हैं, वे टिकाऊपन के मसले पर नजर रखती हैं, आजीविका पर ध्यान केंद्रित करती हैं और अधोसंरचना तथा भू उपयोग नियोजन पर काम करती हैं। आपस में जुड़ी हुई दुनिया में अलग-थलग नियोजन की मदद से शहरीकरण के दायरे को परिभाषित नहीं किया जा सकता है। शहर लोगों और स्थानों से मिलकर बनते हैं और इनमें अक्सर तेजी से परिवर्तन होता है। अगर लचीला शहरी भविष्य तैयार करना है तो यह आवश्यक है कि हम स्थान आधारित एकीकृत समावेशी, जोखिम से बचाव वाली और भविष्योन्मुखी ढंग से समस्याओं को संबोधित करें और उनके हल विकसित करें। जो शहर अपने नियोजन और विकास में लचीलेपन को मूल में रखते हैं वे उसके लाभ को अधिक बेहतर तरीके से हासिल कर पाते हैं। इसमें आबादी, अधोसंरचना, अर्थव्यवस्था और पर्यावरण आदि से संबंधित दबावों और झटकों को बेहतर ढंग से सहने की शक्ति शामिल है।

शहरी क्षेत्र की अन्य चुनौतियां मसलन शहरी आबादी का बढ़ता प्रतिशत (संयुक्त राष्ट्र विश्व शहरीकरण संभावना परियोजना के अनुसार दुनिया की 68 फीसदी आबादी शहरों में रहेगी) आदि ने दबाव बढ़ाया है और इसकी वजह से शहरी बुनियादी ढांचे में तत्काल निवेश बढ़ाने की आवश्यकता है। शहरी जलवायु परिवर्तन शोध नेटवर्क के अनुसार करीब सभी शहर जोखिम में हैं और 70 फीसदी शहर पहले ही जलवायु परिवर्तन का असर झेल रहे हैं। उदाहरण के लिए चूंकि सभी शहरी इलाकों में 90 फीसदी हिस्सेदारी तटीय इलाकों की है इसलिए दुनिया के अधिकांश शहरों में बढ़ते जल स्तर और तूफान के कारण बाढ़ का खतरा भी बहुत अधिक है। हकीकत यह है कि 84 फीसदी से अधिक शहर जहां आबादी की वृद्धि सबसे तेज है, उनमें से अधिकांश एशिया और अफ्रीका में स्थित हैं। इन देशों को जलवायु के क्षेत्र में बड़े खतरों का सामना करना है। सच यह भी है कि कई उच्च जोखिम वाले शहर चुनौतीपूर्ण देशों में स्थित हैं। ये देश कम विकसित हैं, कम आय वाले हैं और कई मामलों में तो ये छोटे द्वीप समूह रूपी देश हैं। शासन संबंधी कमियां और संसाधन की सीमा

हालात को और मुश्किल बनाती है। इस संदर्भ में विश्व बैंक का अनुमान है कि दुनिया भर में सालाना 4.5 लाख करोड़ डॉलर की राशि को शहरी बुनियादी ढांचा क्षेत्र में निवेश करने की आवश्यकता है। बुनियादी ढांचे को जलवायु परिवर्तन की दृष्टि से अनुकूल बनाने के लिए 9 फीसदी से 27 फीसदी के प्रीमियम की आवश्यकता होगी। ये तमाम बातें इस बात पर वजन देती हैं कि शहरी लचीलेपन को कहीं अधिक गंभीरता से देखने की आवश्यकता है।

बीते एक दशक से अधिक वक्त में शहरी लचीलापन अंतरराष्ट्रीय विकास की चर्चाओं में प्रमुख जगह ले चुका है। इसने अंतरराष्ट्रीय विकास के लक्ष्यों के ढांचे में खुद को टिकाऊ शहरी विकास के बुनियादी सिद्धांत के रूप में स्थापित किया है, मिसाल के तौर पर पेरिस समझौता। शहरी लचीलेपन की बुनियादी बातों को आर्थिक, सामाजिक और जलवायु लचीलेपन में बांटा जा सकता है। आर्थिक लचीलापन टिकाऊपन के नए वित्तीय ढांचे पर आधारित है। सामाजिक लचीलापन सामाजिक संरक्षण को मजबूत करने या सामाजिक सुरक्षा ढांचे को व्यापक बनाने के इर्दगिर्द केंद्रित है। वहीं जलवायु लचीलापन पर्यावरण के अनुकूल निवेश तथा बेहतर बहुस्तरीय सहयोग पर आधारित है।

इन जोखिमों से सुरक्षा का सबसे बेहतर तरीका यही है कि बेहतर शहरी नियोजन और प्रबंधन किया जाए। सक्रिय शहरी प्रबंधन रणनीति और अधोसंरचना विकास योजनाओं की बात करें तो इन जोखिमों को ध्यान में रखना उल्लेखनीय बात है। इस संदर्भ में संभावित रुख यह हो सकता है कि सभी शहरी निवासियों को अनिवार्य सेवाएं उपलब्ध कराई जाएं और उन परिवारों पर ध्यान दिया जाए जो सबसे अधिक संवेदनशील स्थिति में हैं। नए विकास को दिशा देने के लिए, प्राकृतिक आपदाओं पर आंकड़े जुटाने तथा जलवायु परिवर्तन की घटनाओं को दर्ज करने के लिए जोखिम संबंधी नियोजन को अंजाम दिया जाना चाहिए। शहरी विकास की प्रक्रिया में भागीदारी का इस्तेमाल होना चाहिए और एक ऐसा रुख विकसित करना चाहिए जो तमाम नगर निकाय संस्थाओं में संस्थागत समन्वय बढ़ाने वाला हो तथा मानव तथा वित्तीय संसाधनों को मजबूती प्रदान करने वाला हो।

Date:22-04-23

G-20 में मोटे अनाज को बढ़ावा देने का बेहतरीन अवसर

सुरिंदर सूद

दुनिया की 20 सबसे बड़ी अर्थव्यवस्थाओं के समूह G-20 के शीर्ष कृषि शोध संस्थाओं के प्रमुखों के लिए प्राथमिकताएं तय हो गई हैं। वाराणसी में इनकी तीन दिवसीय बैठक आयोजित हुई थी। उन्हें कृषि क्षेत्र के समक्ष चुनौतियों से निपटने के लिए विज्ञान आधारित रणनीति तैयार करनी है। कृषि क्षेत्र के समक्ष ये चुनौतियां समय के साथ विकराल होती जा रही हैं। एक तरफ फसल आधारित खाद्य पदार्थों, भोजन, ईंधन और रेशे की आवश्यकताएं बढ़ती जा रही हैं मगर दूसरी तरफ इन आवश्यकताओं की पूर्ति करने में कृषि क्षेत्र की क्षमता लगातार कम पड़ती जा रही है। कृषि योग्य भूमि का आकार लगातार कम होने एवं इसका क्षरण बढ़ने, प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन, जैव-विविधता में कमी और फसलों की कटाई के बाद होने वाले भारी नुकसान इसके प्रमुख कारण हैं। कुछ अन्य कारणों, मसलन रूस-यूक्रेन युद्ध की वजह से आपूर्ति व्यवस्था में बाधा आने से खाद्य पदार्थों एवं उर्वरकों की कीमतों पर दबाव, मौसम में होने वाले असामान्य बदलाव, सूखा, बाढ़ और कीट एवं फसलों में बढ़ती बीमारियां भी इसके लिए जिम्मेदार हैं।

कोविड-19 महामारी से भी वैश्विक स्तर पर खाद्य संकट (food crisis) और गहरा गया है। यह महामारी थम जरूर गई है मगर इसका असर अब भी देखा जा रहा है। कई विकासशील एवं खाद्यान्न की कमी का सामना कर रहे देशों में स्थानीय स्तर पर भी समस्याएं बढ़ गई हैं। खासकर, उन देशों को अधिक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है जो खाद्यान्न, उर्वरक और ईंधन की मांग पूरी करने के लिए इनके आयात पर निर्भर हैं। कोविड महामारी के प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष असर के कारण दुनिया में भूखे एवं कुपोषण के शिकार लोगों की संख्या 15 करोड़ तक बढ़ गई है।

दूसरी तरफ, खाद्यान्न देने वाली फसलों की संख्या में भारी कमी आई है। वैसे खाने योग्य उत्पाद देने वाले हजारों पौधे हैं मगर इनमें 40 प्रतिशत से भी कम का उत्पादन वाणिज्यिक स्तर पर बड़े पैमाने पर होता है और इनका व्यापार भी अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अधिक नहीं हो पा रहा है। सच्चाई यह है कि दुनिया की आबादी की अधिकांश खाद्य जरूरतें तीन फसलें- चावल (Rice), गेहूं (Wheat) और मक्का (Maize)- पूरी करती हैं। प्राकृतिक आपदाओं जैसे कीट-पतंग, बीमारी या अन्य कारणों से इन फसलों की आपूर्ति में बाधा खाद्य प्रणाली का ढांचा कमजोर कर सकती है जिसका सीधा असर खाद्य सुरक्षा पर होगा। किसी भी सूरत में चाहे, परिस्थितियां सामान्य ही क्यों ना रहें तब भी 2030 तक भुखमरी एवं कुपोषण के प्रभावों को खत्म करने का लक्ष्य (टिकाऊ विकास लक्ष्य) पूरा कर पाना मुश्किल होगा।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के महानिदेशक हिमांशु पाठक के अनुसार वाराणसी में आयोजित सम्मेलन का मुख्य लक्ष्य 'स्वस्थ लोगों एवं धरती के लिए टिकाऊ कृषि एवं खाद्य प्रणाली' पर ध्यान केंद्रित करना है। इस लक्ष्य के तहत चर्चा और संभावित बहुपक्षीय सहयोग के लिए चार क्षेत्र चिह्नित किए गए हैं। इनमें खाद्य सुरक्षा मजबूत बनाने एवं पोषण में सुधार के लिए विज्ञान एवं तकनीक का बेहतर इस्तेमाल, जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए कृषि क्षेत्र को सबल बनाना, कृषि क्षेत्र में डिजिटलीकरण और कृषि शोध एवं विकास में सार्वजनिक-निजी भागीदारी बढ़ाना शामिल हैं। इस बैठक के लिए मेजबान देश का प्रमुख लक्ष्य भोजन के रूप में कम इस्तेमाल होने वाले एवं अक्सर दरकिनार किए जाने वाली फसलों, खासकर मोटे अनाज (कदन्न) की भूमिका को रेखांकित करना है। इस बात को समझने की जरूरत है कि ये अनाज भोजन में विविधता लाने के साथ ही पोषण की गुणवत्ता में सुधार करने की क्षमता रखते हैं। इसके अलावा कृषि क्षेत्र पर जलवायु परिवर्तन के असर को कम करने के साथ ही ये कम उपजाऊ, क्षरित एवं गैर-सिंचित भूमि पर निर्भर छोटे किसानों की जीविका सुरक्षित करने में भी अहम योगदान दे सकते हैं। इस कदम के पीछे मूल तर्क यह है कि तकनीक एवं आवश्यक तत्वों की मदद से इन तीनों अनाज- चावल, गेहूं एवं मक्का- के उत्पादन में बढ़ोतरी से खाद्य की पर्याप्त आपूर्ति जरूर सुनिश्चित हो गई है मगर मोटे अनाज आदि का उत्पादन बढ़ाकर खाद्य सुरक्षा को और अधिक मजबूत बनाया जा सकता है। ये फसलें कृषि कार्यों के लिए प्रतिकूल माहौल में भी अपना वजूद कायम रखती हैं। इन फसलों के जीन में सुधार और बेहतर उत्पादन तकनीक पर बहुत अधिक सार्वजनिक निवेश की भी जरूरत भी नहीं होती है। किसानों को भी इन फसलों के उत्पादन पर उर्वरकों, कीटनाशकों और सिंचाई आदि पर अधिक लागत नहीं आती है। एक और ध्यान देने योग्य बात यह है कि सूक्ष्म अनाज जैसे चावल एवं गेहूं पर शोध एवं विकास पर किए गए निवेश से मिलने वाले लाभ अब कम होने लगे हैं। मगर मोटे अनाज एवं प्राथमिकता की सूची से बाहर अन्य अनाज का उत्पादन बढ़ाने की संभावना काफी अधिक है। नई पादप प्रजनन तकनीक की मदद से ऐसा करना काफी आसान हो गया है।

इस बात को ध्यान में रखते हुए भारत ने मोटे अनाज और अन्य उपेक्षित मगर पोषक तत्वों से भरपूर और प्रतिकूल मौसम सहने में सक्षम अनाज के लिए एक नई पहल शुरू करने का प्रस्ताव दिया है। 'मोटे अनाज एवं अन्य प्राचीन अनाज अंतरराष्ट्रीय शोध' नाम से शुरू की गई इस परियोजना के तहत विभिन्न फसलों पर काम करने वाली शोध संस्थानों को एक दूसरे से जोड़ने और उत्पादन बढ़ाने और रोग एवं कीटनाशक प्रबंधन पर उनके शोध के बीच समन्वय

स्थापित करने के लिए एक ढांचे की स्थापना की जाएगी। यह परियोजना 'महर्षि' के नाम से भी जानी जाती है। इसके तहत शोधकर्ताओं को एक दूसरे से जोड़ने और वैज्ञानिकों एवं आम लोगों को आवश्यक जानकारी देने के लिए एक इंटरनेट प्लेटफॉर्म तैयार किया जाएगा। शोध कार्यों को बढ़ावा देने और जागरूकता बढ़ाने के लिए युवा वैज्ञानिकों को पुरस्कार भी दिए जाने की योजना है। यह संस्थान हैदराबाद स्थित भारतीय कदन्न अनुसंधान संस्थान (IIMR) में स्थापित किया जाएगा जहां अंतरराष्ट्रीय अर्द्ध-शुष्क उष्णकटिबंधीय फसल अनुसंधान संस्थान के साथ परस्पर सहयोग बढ़ाया जाएगा। यह संस्थान तेलंगाना में पाटनचेरु में स्थापित किया जाएगा। इस संस्थान का सचिवालय G-20 के सदस्य देशों में बारी-बारी से व्यावहारिक उद्देश्य से अस्थायी रूप से स्थापित किए जा सकते हैं। अगर यह प्रस्ताव G-20 के मुख्य कृषि वैज्ञानिकों की बैठक में स्वीकार हो जाता है तो यह कदन्न (मिलेट) एवं अन्य उपयोगी खाद्य फसलों के विकास के लिए किसी वरदान से कम नहीं होगा। इन फसलों पर आवश्यकतानुसार शोध एवं विकास कार्य नहीं हो पा रहे हैं।

जनसत्ता

Date:22-04-23

समझौते की राह

संपादकीय

यह अपने आप में विडंबना ही है कि भारत के भीतर ही दो राज्यों के बीच सीमा का मसला करीब पांच दशकों तक उलझा रहा और उसे लेकर दोनों ओर से दावे किए जाते रहे। लेकिन इस मामले में इतने लंबे वक्त के बाद अब जाकर हल का जो रास्ता निकला है, उससे उम्मीद बंधी है कि अरुणाचल प्रदेश और असम इस मुद्दे से आगे निकल कर अब अपने क्षेत्राधिकार में अन्य समस्याओं के हल पर ध्यान देंगे। दरअसल, गुरुवार को केंद्रीय गृहमंत्री की मौजूदगी में असम और अरुणाचल प्रदेश की सरकारों ने अपने बीच पुराने सीमा विवाद को खत्म करने के लिए एक समझौते पर हस्ताक्षर किए। इसके साथ ही यह माना जा रहा है कि पूर्वोत्तर के इन दोनों राज्यों की सीमा पर स्थित एक सौ तेईस गांवों से जुड़ी समस्या का भी हल हो गया है।असम और अरुणाचल प्रदेश लगभग आठ सौ चार किलोमीटर लंबी सीमा साझा करते हैं। लेकिन 1972 में जब अरुणाचल प्रदेश को केंद्रशासित प्रदेश घोषित किया गया था, उसके बाद से ही दोनों राज्यों के बीच यह विवाद चल रहा था। अरुणाचल का दावा था कि मैदानी हिस्सों में कई वन क्षेत्र पारंपरिक रूप से आदिवासी प्रमुखों और समुदायों के होते थे, लेकिन एकतरफा फैसले के तहत उस जमीन को खत्म हो सकता है असम और अरुणाचल सीमा विवाद, अमित शाह की उपस्थिति में दोनों राज्य करेंगे पर साइन दरअसल, इस इलाके में अलग राज्यों के गठन के वक्त ही सीमा के सही निर्धारण को लेकर स्पष्टता नहीं बन पाई थी और यही इस पूरे विवाद की जड़ रही। इसी वजह से समय-समय पर पिछले पचास साल से दोनों राज्यों के बीच आपस में खींचतान चलती रहती थी। यही नहीं, इसी विवाद की वजह से असम और इलाके के चार राज्यों- मेघालय, मिजोरम, नगालैंड और अरुणाचल प्रदेश के बीच अक्सर हिंसा की घटनाएं भी होती रही हैं। इक्का-दुक्का उदाहरणों को छोड़ दिया जाए तो देश भर में अमूमन सभी राज्यों की सीमाओं को लेकर आमतौर पर कोई बड़ी उठापटक या खींचतान नहीं रही है। नए राज्यों के गठन या किसी राज्य के विभाजन को अंतिम रूप दिए जाने के पहले ही अगर सीमा-क्षेत्र का स्पष्ट निर्धारण कर लिया जाए तो शायद इस उलझन

से बचा जा सकता है। यह समझना मुश्किल है कि असम और अरुणाचल प्रदेश के बीच का विवाद इतने लंबे वक्त तक क्यों खिंचता रहा। अब इस संबंध में एक रास्ता निकल सका है तो जाहिर है कि इस मसले का समाधान पहले भी निकल आता। मगर ऐसा लगता है कि अब तक इसके लिए ईमानदार राजनीतिक इच्छाशक्ति के साथ ठोस पहल नहीं हो सकी थी। हालांकि पिछले साल जुलाई में असम और अरुणाचल प्रदेश के मुख्यमंत्रियों ने 'नामसाई घोषणापत्र' के जरिए अपने बीच के सीमा विवाद को खत्म करने का संकल्प लिया था। उसमें विवादित गांवों को पहले के एक सौ तेईस के बजाय छियासी तक सीमित करने का फैसला लिया गया था। अच्छी बात है कि टकराव और हिंसा तक के हालात से गुजरने के बाद अब जाकर इस पुराने लंबित विवाद को एक तरह से 'सौहार्दपूर्ण' तरीके से सुलझाया गया है। यह एक अहम उपलब्धि है। खासतौर पर पूर्वोत्तर के राज्यों में उथल-पुथल और अक्सर हिंसक टकराव के अतीत को देखते हुए कहा जा सकता है कि इस समझौते से देश के संघीय ढांचे को मजबूत करने और राज्यों के बीच आपसी संबंधों को बेहतर बनाने में मदद मिलेगी। उम्मीद की जानी चाहिए कि इस विवाद का खत्म होना न केवल असम और अरुणाचल प्रदेश में, बल्कि पूर्वोत्तर के अन्य राज्यों में भी सर्वांगीण विकास और शांति का रास्ता साफ करेगा।